© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

मध्ययुग में संगीत कला का अध्ययन

डॉ0 मनोज कुमार सिंह
अतिथि प्रवक्ता,
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हमारे देश में संगीत की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही हैं। हिन्दू अनुश्रुति के अनुसार, संगीत के रचयिता देवी–देवतओं की ओर से हिन्दू धर्म को यह एक उपहार था। 'गन्धर्व' वेद' से तात्पर्य संगीत कला से ही है।[1] जो साधारण बोलचाल की भाषा में संगीत केवल गायन समझा जाता है लेकिन संगीत जगत में गायन, वादन व नृत्य तीनों के समूह को संगीत कहते हैं। इस प्रकार संगीत के मुख्य तीन अंग हुये गायन, वादन, व नृत्य। संगीतरत्नाकर में कहा गया है कि गाना, बजाना व नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप संगीत कहलाता है। किवदंती है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने सरस्वती देवी को तथा सरस्वती ने नारद को संगीत की संज्ञा दी। इसके बाद नारद ने भतर को और भरत ने नाट्यशास्त्र द्वारा जन–साधारण में संगीत का प्रचार किया।[2]

प्राचीन काल से ही प्रत्येक हिन्दू शासक संगीतकारों को अपने यहाँ आश्रय देते थे तथा वे स्वयं भी अच्छे संगीतकार होते थे परन्तु कट्टर इस्लाम शासकों ने संगीत को धार्मिक भावनाओं के कारण इसे हेय दृष्टि से देखते थे। कुरान में संगीत को न तो अच्छा कहा गया है न बुरा। इस प्रकार संगीत निषिद्ध होते हुये भी प्रशंसा का पात्र बना रहा। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया तो कुछ ने निषेधाज्ञा निकलवाकर संगीत की पूर्णतया अवहेलना की, परन्तु हिन्दू–संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण कुछ मुसलमान शासकों ने भी संगीत के प्रति अभिरुचि व्यक्त की उनमें संगीत के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिए दो बातें प्रकाश में आईं। सर्वप्रथम तत्कालीन इस्लाम के सूफी मंत के संतों ने श्रद्धा और प्रेम से ओत–प्रोत, भजन, गीत, और कविताओं के विकास में अपना सहयोग दिया तथा तथा दूसरा जो हिन्दू धर्म–परिवर्तन द्वारा मुस्लिम बन गये थे वे अपने साथ जो भक्ति–गीतों की भावनाओं को लाये उसे नहीं त्याग सके। इन दो कारणों से ही मुसलमानों में संगीत के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने संगीत पर प्रतिबंध लगा दिये थे लेकिन बलबन, जलालुद्दीन, अलाउद्दीन तथा मुहम्मद–बिन–तुगलक आदि शासकों ने कभी–कभी अपने दरबार में संगीत द्वारा मनोरंजन करते थे तथा मुबारकशाह खिजली को संगीत से अगाध प्रेम था। मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद में 'तखआदाद' नामक महल बनवाया था, जिसमें शाही

मेहमानों का मनोरंजन करने के लिये गाने वाली लड़कियाँ रखता था तथा फिरोज तुगलक भी संगीत कला का महान आश्रय दाता था।[3]

सूफी सन्तों ने संगीत के विकास में विशेष योगदान दिया। अजमेर के मुईनउद्दीन चिश्ती तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया ने भक्ति भावना की कब्बालियों को प्रचलित किया। निजामुद्दीन के प्रसिद्ध शिष्य अमीर खुसरों एक महान संगीतकार थे, इनका सबसे बड़ा योगदान भारतीय और फारसी संगीत के बीच समन्वय स्थापित करना था। इस विषय में डॉ0 युसुफ हुसैन लिखते हैं कि खुसरों में संश्लिष्टता के लिये महान विलक्षण बुद्धि थी। वे पहले हिन्दुस्तानी मुसलमान थे जिन्होंने फारसी और हिन्दुस्तानी संगीत स्वरों को आपस में मिलाने का विचार किया 'ध्रुपद' के अतिरिक्त 'ख्याल' संगीत को नया रूप दिया। यह भी कहा जाता है कि खुसरों ने निम्न रागों का अविष्कार किया जो नवीन हिन्दू, मुस्लिम संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं, मूजिर, सज्गारी, ऐमन, उरशाफ, तराना, ख्यात, निगार, बसित, शाहना और सुहेल।[4] खुसरों ने अनेक वाद्य यंत्रों के आविष्कार में भी योगदान दिया तथा खुसरों ने प्राचीन भारतीय वीणा और ईरानी 'तम्बूरे' के मेल से 'सितार' का आविष्कार किया तथा पुराने मृदंग को परिवर्तित कर उसे 'तबले' का रूप दिया। यह हिन्दू धर्म पर इस्लाम का प्रभाव था। हिन्दू शासक मेवाड़ का महाराणा कुम्भा स्वयं संगीत, प्रेमी, गायक और कुशल, वीणा बजाने वाला था तथा संगीत पर संगीत राज नामक ग्रंथ तथा संगीतरत्नाकर और गीतगोविन्द की टीका भी की तथा देवताओं की गेय स्तुतियाँ भी बनाई। माण्डू का राजा बाजबहादुर भी इस कला के प्रति आसक्त था ग्वालियर का राजा मानसिंह तोमर संगीत में प्रवीण तथा 'ध्रुपदी' गायन का प्रवर्तक था। इन्हीं से संगीत कला का प्रचलन हुआ तथा इनकी रानी भी संगीतज्ञ थी। सल्तनत काल में भैरवी, पीलू, सोहानी और सिन्धु आदि राग धार्मिक गोष्ठियों में गाये जाने लगे। शाहमा, दरबारी और मालकोश दरबार के अन्दर गाये जाते थे।

मुगलकाल के शासकों में औरंगजेब को छोड़कर समस्त शासक संगीत के आश्रयदाता थे। इतिहासकार लेनपूल ने लिखा है कि गायन बाबर के समय की एक विशिष्ट कला मानी जाती थी। बाबर का स्वयं गाने का शौक था, जिसने अपनी आत्मकथा में जगह–जगह संगीत गोष्ठियों का वर्णन किया है। बाबर ने अनेक गीतों की भी रचना की थी तथा बाबरनामा में अपने प्रसिद्ध गायकों का उल्लेखा किया है। बाबर के समान हुमायूँ भी संगीत का प्रेमी था। सोमवार और बुधवार को ही संगीत सुनता था उसे सूफी संतों के गानों की विशेष अभिरूचि थी। संगीत का वास्तविक विकास अकबर के युग में हुआ अकबर को सगीत से विशेष प्रेम था। अबुलफजल ने लिखा है कि सम्राट संगीत पर विशेष रूप से ध्यान दिया तथा इस मनोहर कला के कलाकारों को संरक्षण दिया था, अकबर के दरबार में हिन्दू, ईरानी, तूरानी, काश्मीरी, स्त्री–पुरुष बहुत से संगीतज्ञ हुये। दरबारी संगीतज्ञों का सप्ताह में सात दिन के लिये सात दल होते थे। कहा जाता है कि अकबर को संगीत विद्या का इतना अधिक ज्ञान था जितना कुशल गवैये को भी नहीं होगा। इसने लगभग

200 रागों की रचना की थी। वह नक्कारा बजाने में अत्यंत कुशल था तथा अकबर के दरबार में लगभग 66 कलाकार थे।[5] अबुजफजल, अब्दुर्ररहीम खानखाना, राजा भगवानदास और मानसिंह जैसे दरबारी संगीतज्ञों को अपन यहाँ संरक्षण प्रदान करते थे।

अकबर के दरबार में संगीत सम्राट तानसेन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने दीपक राग, मेघ राग डुगरी गाकर अपनी संगीत कला का परिचय दिया। अबलफजल ने उल्लेख किया है कि भारत में उसके समान हजार वर्षों में कोई गायक नहीं हुआ। तानसेन रीवा के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे, जो कालान्तर में इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिये थे। इन्होंने राजा मानसिंह तोमर द्वारा स्थापित विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी, कहा जाता है कि वे अपने संगीत द्वारा बहुत हुये यमुना जल को रोक देते थे इनकी मृत्यु अत्यधिक मदिरापान के कारण सन् 1558 ई0 में 34 वर्ष की आयु में हो गई।[6] तानसेन के बाद संगीतज्ञों में बाबा रामदास थे। मालवा के भूतपूर्व राजा राजबहादुर भी अकबर द्वारा विभिन्न संगीतज्ञों को शरण देने में हिन्दुस्तानी संगीत का अपूर्व विकास हुआ तथा प्रसिद्ध गायकों ने अनेक महत्वपूर्ण रागों का अविष्कार किया और संगीत के संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया इसके साथ–साथ तराना, ठुमरी, गजल, कव्वाली आदि का जन्म हुआ। अकबर के समान जहाँगीर ने भी संगीत को संरक्षण प्रदान किया और वह संगीतज्ञों को उत्साहित करता रहता था। विलियम फिन्च के मतानुसार कई सौ गायक और गायिका दिन–रात हाजिर रहते थे, उनकी बारी हर सातवें दिन आती थी, ताकि जब बादशाह उनके योग्यता अनुसार पुरस्कार देता था। जहाँगीर के दरबार में छत्रखाँ, परबीज, एदाद, मखू, खुर्रमदाद, हम्ज, विलास खाँ तथा तानसेन के पुत्र आदि महान संगीतज्ञ रहते थे।

शाहजहाँ संगीत प्रेमी होने के साथ–साथ स्वयं संगीत कला में दक्ष था। सर जदुनाथ सरकार ने कहा हे कि 'शाहजहाँ' का स्वर इतना आकर्षक था कि बहुत से संसार से विरक्त पवित्र हृदय वाले सूफी और सन्त इन शायंकालीन महफिलों में शाहजहाँ की संगीत स्वर–लहरी में अपनी सुध–बुध भुला बैठते थे। दीरंग खाँ, लाल खाँ, जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन, सुरसेन आदि इसके शासन काल के महान संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ इस काल के महान संगीतज्ञ, संस्कृत के कवि और विद्वान थे। 'रामगंगाधर' तथा 'गंगालहरी' इनकी प्रसिद्ध रचनायें थी। औरंगजेब के शासन काल से संगीत कला के विकास की गति रुक सी जाती है। धार्मिक कट्टर विचार का होने के कारण उसे संगीत कला से घृणा थीं लेकिन उसने वाद्य संगीत पर रोक नहीं लगाई थी। यहाँ तक कि वह स्वयं कुशल वीणा वादक था।[7] उसने अपने दरबार के समस्त संगीतज्ञों को पद से बहिष्कृत कर दिया तथा लोग अपने घर में गा–बजा नहीं सकते थे। संगीतकारों को पग–पग पर अपमानित किया जाने लगा। औरंगजेब के इस व्यवहार के कारण सभी संगीतकार निराश होकर प्रांतीय नरेशों

और नवाबों के यहाँ चले गये, इस युग के संगीतकारों में भागदत्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो राजा अनूप सिंह के राज्याश्रय में रहते थे। औरंगजेब के पश्चात् मुहम्मदशाह ने संगीत को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया अदबरंग, सदाबरंग और ख्यालों से उसका दरबार गूँजता रहता था। उसके काल में ही शीरीमियाँ ने 'टप्पा' गायन का प्रचार किया था तथा संगीत पर रागतत्व–नवबोध नामक ग्रंथ की रचना की जो उत्तर भारत मध्य युगीन संगीत का अंतिम ग्रंथ है।

मुगल शासकों के समान ही दक्षिण के सुल्तान भी संगीत में रुचि रखते थे तथा हिन्दू राजा भी अपने यहाँ संगीतकारों को सरंक्षण प्रदान करना अपना परम कर्तव्य समझते थे और यथासम्भव आदर देते थे। 18वीं शताब्दी तक यह श्रेष्ठ कला अपने उच्च स्थान से पतन की ओर अग्रसर हो गई। अब यह गायिकाओं तथा पेशेवर नर्तकियों की कला समझी जाने लगी। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में राष्ट्रीय चेतना के पुर्नजन्म से इसे पुनः पहले की भाँति गौरव स्थान प्राप्त हो गया है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में अनेक स्थानों पर संगीत के लिये व संगीत संस्थाओं की स्थापना के लिये सामूहिक प्रयास किये गये। कुछ स्थान पर संगीत विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया गया। सन् 1909 ई0 में पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने लाहौर में संगीत विद्यालय की स्थापना की। बड़ौदा के महाराजा ने अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन किया, और इस सम्मेलन में विचार–विमर्श करने के लिए सन् 1919 ई0 में अखिल भारतीय संगीत परिषद स्थापित की गई। संगीत के अध्ययन को प्रोत्साहित किया गया, धीरे–धीरे भारतीय विश्वविद्यालयों में संगीत अध्ययन प्रारम्भ हुआ, अब यह देश की मूल निधि बनी हुई है यह हमारे देश का गौरव, संस्कृति एवं सभ्यता की पहचान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. एस0 के0 माथुर, भारत की सांस्कृतिक विरासत, कॉलेज बुक डिपो, जिन्सी नाला रोड नं0 1, लश्कर, ग्वालियर (म0 प्र0) पृ0 50–60
2. वही, पृ0 61
3 एस0एन0 पहाड़िया, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास, संजीव प्रकाशन, मेरठ संस्करण चतुर्थ पृ0 362–363
4. सत्यनारायण दुबे, इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ0 383
5. ए0के0 मित्तल, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशंस आगरा, वर्ष 2002, पृ0 341
6. दिनेश चन्द भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, हमीदिया मार्ग, भोपाल, पृ0 286–187
8. एस0एन0 ओझा एवं संजय कुमार सिंह, मध्यकालीन भारत, क्रानिकल बुक्स पृ0 210–211